डॉ. राय शिवेंद्र बहादुर

बनाम

नालंदा कॉलेज की शासी निकाय

(बी. पी. सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश, जे. एल. कपूर, एम. हिदायतुल्ला,

जे. सी. शाह और जे. आर. मुधोलकर, न्यायमूर्तिगण)

परमादेश रिट —बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध नालंदा कॉलेज—प्राचार्य की नियुक्ति—नियुक्ति के प्रश्न के संबंध में कानूनी अधिकार, यदि कोई हो—कब और किस स्थिति में रिट जारी की जा सकती है—बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम 1951 (1951 का बिहार अधिनियम 27), विश्वविद्यालय परिनियम XVI—भारत का संविधान, अनुच्छेद 226।

अपीलकर्ता को 1958 में बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध नालंदा कॉलेज के प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था। विश्वविद्यालय परिनियम XVI की आवश्यकता के अनुसार इस तथ्य की सूचना विश्वविद्यालय को दी गई थी, लेकिन विश्वविद्यालय परिनियम के अनुच्छेद 5 की आवश्यकता के अनुसार सिंडिकेट द्वारा नियुक्ति को अनुमोदित नहीं किया गया था। 1960 में एक नई शासी निकाय ने एक नए प्राचार्य की नियुक्ति का प्रस्ताव पारित किया और निर्णय लिया कि इस बीच अपीलकर्ता नई नियुक्ति होने तक कार्य करता रहेगा। शासी निकाय ने अपीलकर्ता सहित उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया और एक प्रस्ताव द्वारा अपने अध्यक्ष को अंतिम चयन करने के लिए अधिकृत किया। प्राचार्य के चयन की वैधता को अपीलकर्ता द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत परमादेश रिट जारी करने की मांग करके चुनौती दी गई थी।

अभिनिर्धारित, कि प्राधिकारियों को कुछ करने के लिए बाध्य करने हेतु परमादेश जारी करने के लिए यह दिखाया जाना चाहिए कि कानून एक कानूनी कर्तव्य थोपता है और व्यथित पक्ष के पास कानून के तहत उसके पालन को लागू करने का एक कानूनी अधिकार है।

तत्काल मामले में यह नहीं दिखाया गया है कि अपीलकर्ता के पास ऐसा कोई अधिकार था जिसे परमादेश रिट द्वारा लागू किया जा सके।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1961 की दीवानी अपील संख्या 403

विविध न्यायिक मामला संख्या 404/1961 में पटना उच्च न्यायालय के 19 जुलाई, 1961 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

अपीलकर्ता के लिए *वासुदेव प्रसाद* और *नौनित लाल।*

उत्तरदाताओं के लिए *एन. सी. चटर्जी, डी. पी. सिंह, आर. के. गर्ग, एस. सी. अग्रवाल* और *एम. के. राममूर्ति।*

1961, दिसंबर 15- न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

कपूर, न्यायमूर्ति—यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपीलकर्ता की याचिका को खारिज करने वाले पटना उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील है। उत्तरदाता नालंदा कॉलेज की शासी निकाय, इसके अध्यक्ष श्री कृष्ण कांत सिंह, इसके सचिव श्री के. बी. पी. एन. सिंह और श्री राम स्वरूप नारायण सिन्हा हैं जिन्हें कॉलेज का प्राचार्य नियुक्त किया गया है।

मामले के प्रासंगिक तथ्य ये हैं: नालंदा कॉलेज की स्थापना 1920 में एक निजी नागरिक द्वारा की गई थी। यह 1945 में एक डिग्री कॉलेज बना और 1951 में बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध हो गया। मार्च 1953 में, श्री डी. पी. श्रीवास्तव, जो एक सरकारी कर्मचारी थे, को इसका प्राचार्य नियुक्त किया गया था, लेकिन सरकार ने 4 फरवरी, 1958 को उन्हें वापस बुला लिया। यह आरोप लगाया गया है कि 23 फरवरी, 1958 को आयोजित कॉलेज की शासी निकाय की एक असाधारण बैठक में अपीलकर्ता को इसका प्राचार्य नियुक्त किया गया था और विश्वविद्यालय को इस नियुक्ति की सूचना विश्वविद्यालय परिनियमों की आवश्यकता के अनुसार दी गई थी और उन्होंने वास्तव में 11 जुलाई, 1958 को अपने कार्यालय का कार्यभार संभाला था। 27 जुलाई, 1958 की एक बैठक में 23 फरवरी, 1958 को

की गई नियुक्ति की पुष्टि की गई थी। 9 नवंबर, 1959 को शासी निकाय के गठन में बदलाव हुआ और उत्तरदाता संख्या 2 इसके अध्यक्ष बने। शासी निकाय ने 23 फरवरी, 1958 की कार्यवाही पर पुनर्विचार किया और 31 जनवरी, 1960 की एक बैठक में शासी निकाय ने एक नया प्राचार्य नियुक्त करने का प्रस्ताव पारित किया। इस बीच उसने निर्णय लिया कि नई नियुक्ति होने तक अपीलकर्ता कार्य करता रहेगा। इस बैठक में अपीलकर्ता पदेन सदस्य के रूप में उपस्थित थे। उनका आरोप है कि उन्होंने इस नियुक्ति के बारे में बिहार विश्वविद्यालय के कुलपति से शिकायत की थी और उन्हें कुलपति द्वारा एक पत्र के माध्यम से सलाह दी गई थी कि वे देखें कि आगे क्या होता है। 14 मई, 1960 को शासी निकाय ने पद के लिए विज्ञापन देने का निर्णय लिया। इस बैठक में भी अपीलकर्ता उपस्थित थे और 26 सितंबर, 1960 को शासी निकाय ने पद को पुनः विज्ञापित करने का निर्णय लिया। अपीलकर्ता सहित कुछ उम्मीदवारों का साक्षात्कार शासी निकाय द्वारा लिया गया और 18 दिसंबर, 1960 को इसने उन उम्मीदवारों में से चयन करने के लिए अध्यक्ष को अधिकृत करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया, जिनका साक्षात्कार लिया गया था और जिनमें अपीलकर्ता भी शामिल थे। इस प्रस्ताव के अनुसार, अध्यक्ष (उत्तरदाता संख्या 2) ने उत्तरदाता संख्या 4 को कॉलेज के प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया। वह उस समय बिहार के एक अन्य कॉलेज के प्राचार्य थे। 18 अप्रैल, 1961 को अपीलकर्ता को 6 मई, 1961 तक नए नियुक्त व्यक्ति को कार्यभार सौंपने के लिए कहा गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका दायर कर प्राचार्य के रूप में उत्तरदाता संख्या 4 की नियुक्ति की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी कि अपीलकर्ता की नियुक्ति कभी समाप्त नहीं की गई थी और यदि कोई ऐसा प्रस्ताव था जिसके द्वारा 23 फरवरी, 1958 के प्रस्ताव को रद्द या निरस्त किया गया था, तो वह अवैध था क्योंकि वह निपटाए जाने वाले कार्यसूची में शामिल नहीं था और बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम, 1951 (1951 का अधिनियम 27) के तहत बनाए गए विश्वविद्यालय परिनियमों के कुछ प्रावधानों के कारण शून्य था, जिनका कानून के समान बल है; कि नए

प्राचार्य की नियुक्ति अमान्य थी क्योंकि नियुक्ति कॉलेज की शासी निकाय द्वारा उसकी बैठक में की जानी थी और यह शक्ति अध्यक्ष या सचिव को प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती थी; कि नियुक्ति को विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था और अपीलकर्ता उत्तरदाता संख्या 4 की तुलना में बेहतर उम्मीदवार थे और वे परिनियम XVI के अनुच्छेद 4 (1) (बी) के तहत पदोन्नति के हकदार थे।

इन आरोपों का उत्तरदाताओं द्वारा खंडन किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि 23 फरवरी, 1958 का प्रस्ताव मान्य नहीं था क्योंकि इसमें पदोन्नति के लिए अन्य शिक्षकों के मामले पर विचार नहीं किया गया था; कि अपीलकर्ता की नियुक्ति को कभी भी सिंडिकेट द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था जैसा कि परिनियम XVI के अनुच्छेद 5 द्वारा आवश्यक है; कि नई शासी निकाय द्वारा प्रस्ताव पारित किए जाने के बाद प्राचार्य के पद के लिए स्वयं आवेदन करने और शासी निकाय के समक्ष साक्षात्कार के लिए खुद को प्रस्तुत करने के बाद अपीलकर्ता नियुक्ति की वैधता को चुनौती नहीं दे सकते थे क्योंकि वे एक साथ समर्थन और विरोध नहीं कर सकते थे।

उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अपीलकर्ता की नियुक्ति मान्य नहीं थी क्योंकि सिंडिकेट ने अपनी स्वीकृति नहीं दी थी और याचिकाकर्ता को ऐसी स्वीकृति के बिना प्राचार्य के पद पर कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी गई थी; कि प्राचार्य के पद के लिए विज्ञापन देने का शासी निकाय का निर्णय न तो दंड का मामला था और न ही सेवा की समाप्ति और न ही यह अपीलकर्ता का पदावनयन था, इसलिए यह परिनियमों के अनुच्छेद 7, 8 और 9 के अंतर्गत नहीं आता था। इसने यह भी अभिनिर्धारित किया कि नए प्रस्ताव के पारित होने के विरुद्ध अपीलकर्ता की ओर से कोई विरोध नहीं था और चूंकि उन्होंने स्वयं को चयन के लिए प्रस्तुत किया था, इसलिए अब वे शिकायत नहीं कर सकते थे यदि किसी और को चुना गया था। इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलकर्ता नई नियुक्ति को

चुनौती नहीं दे सकते थे क्योंकि (1) उनकी अपनी नियुक्ति मान्य नहीं थी और (2) उत्तरदाता संख्या 4 की नियुक्ति मान्य थी क्योंकि इसे विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किया गया था।

हमारे समक्ष इस बात पर काफी विवाद खड़ा किया गया कि बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 20 के तहत विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए परिनियमों का कानून के समान बल है या नहीं और क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कॉलेज की शासी निकाय के विरुद्ध रिट जारी की जा सकती है, अर्थात् क्या अपीलकर्ता के पास उत्तरदाताओं द्वारा कानूनी कर्तव्य के पालन का कानूनी अधिकार है। परमादेश जारी करने के लिए ताकि उत्तरदाताओं को कुछ करने के लिए बाध्य किया जा सके, यह दिखाया जाना चाहिए कि परिनियम एक कानूनी कर्तव्य थोपते हैं और अपीलकर्ता के पास परिनियमों के तहत उसके पालन को लागू करने का कानूनी अधिकार है। हालांकि, इस प्रश्न में जाने या यह तय करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है कि क्या परिनियम कॉलेज की शासी निकाय पर ऐसा कर्तव्य थोपते हैं जिसे *परमादेश* रिट द्वारा लागू किया जा सकता है, क्योंकि यह मानते हुए भी कि अपीलकर्ता का यह तर्क सही है कि कॉलेज एक सार्वजनिक निकाय है और उसे प्राचार्य की नियुक्ति में सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करना है, यह नहीं दिखाया गया है कि अपीलकर्ता के पास ऐसा कोई अधिकार है जिसे *परमादेश* द्वारा लागू किया जा सके। परिनियमों के अनुसार शिक्षकों और कर्मचारियों की सभी नियुक्तियाँ शासी निकाय द्वारा की जानी हैं और किसी भी व्यक्ति को नियमों के अनुसार ही नियुक्त, हटाया या पदावनत किया जा सकता है, लेकिन अपीलकर्ता ने यह नहीं दिखाया है कि उसके पास नियुक्ति या बहाली के लिए आदेश प्राप्त करने का कोई अधिकार है। हमारा ध्यान परिनियमों के किसी भी ऐसे अनुच्छेद की ओर नहीं दिलाया गया है जिसके द्वारा अपीलकर्ता को नियुक्त या बहाल होने का अधिकार हो और यदि उसके पास वह अधिकार नहीं है तो वह न्यायालय में नहीं आ सकता और रिट जारी करने की मांग नहीं कर सकता। इसलिए किसी अन्य प्रश्न में जाना आवश्यक नहीं है।

परिणामस्वरूप अपील विफल होती है और खारिज की जाती है, लेकिन परिस्थितियों को देखते हुए पक्षकारों को अपनी-अपनी लागत स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

अपील खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।